

(राग: जोगिया - ताल: व्रिताल)

आतां जाई रे शरण, जरि धरिसि चरण, दूर जन्ममरण करी गुरुची कृपा। टाकुनियां गुरु सार्वभौम हा, कां रे तूं पसरिसी कर हे नृपा ॥६७.॥ हा देह शकट, अस्थि मांस प्रकट, पहा सकल हे घट, जन्ममृत्यु जरा। कालचक्रिं गुंतले जीवशिव, शिवशिवशिव कथि येतील घरा। हे स्त्री पुत्र धन देह लोभांचे बंधन, येंगे पावसी पतन, करि शीघ्र त्वरा। ज्ञानामृत पिऊनी सुखी हो कितितरि सेविसि विषय गरा। बहु वाढविले तंत्र, किती जपसी हे मंत्र, परि होसी परतंत्र, धरि श्रीगुरुजपा ॥७।॥ पहा स्थूल सूक्ष्म गति, गुण अवस्था जागृति, स्वप्न सुषुप्ति उत्पत्ति, स्थिति लय व्यवहार। पंचभूत माया विद्या त्रैकालिक मिथ्या, करि तूं विचार। तूंचि पंच महापापी, वेदतयालगीं शापी, बोले जग द्वयरूपी, भेद करी व्यवहार।

ज्ञानरूप मार्तडि प्रकाशें, द्वैतदृष्टिचा करि संहार। मुळी झालाचि नाहीं, मग कैची भव फांशी, गुरुवाक्य उजळिसी या ज्ञानदीपा ॥ टाकुनियां गुरु सार्वभौम हा, कां रे तूं पसरिसी कर हे नृपा ॥८।॥